ISSN: ISSN: 2583-5149 | Vol-4, Issue-1 | July 2026

रघुवंश महाकाव्य में वर्णित आनंद प्राप्ति के उपाय

डॉ. ज्योति

सह – प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग

जानकी देवी मेमोरियल महाविद्यालय

सारांश:

भारतीय साहित्यिक एवं दार्शनिक परंपरा में 'आनन्द' मानव जीवन के परम उद्देश्यों और जीवन-मूल्यों से संबद्ध एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। महाकवि कालिदास द्वारा रचित *रघुवंश महाकाव्य* में राजधर्म, लोककल्याण, कर्तव्य, त्याग, संयम, प्रेम, परिवार, प्रकृति तथा आध्यात्मिक चेतना के माध्यम से आनन्दमय जीवन की व्यापक दृष्टि प्रस्तुत होती है। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य *रघुवंश* में वर्णित उन जीवन-मूल्यों एवं आचरण-पद्धतियों का विश्लेषण करना है, जिनके माध्यम से व्यक्ति स्थायी एवं सार्थक आनन्द की प्राप्ति कर सकता है। महाकाव्य के विभिन्न सर्गों में वर्णित रघुवंशी राजाओं के चरित्र, उनके कर्तव्यपरायण जीवन, प्रजावत्सलता, धर्मनिष्ठा, त्याग एवं आत्मसंयम का अध्ययन करते हुए यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि कालिदास के लिए आनन्द केवल भौतिक सुख अथवा इन्द्रिय-तृप्ति तक सीमित नहीं है, बल्कि कर्तव्य, धर्म, लोकसेवा, प्रेम, त्याग और आत्मिक संतोष के समन्वय से उत्पन्न होने वाली जीवनगत अनुभूति है। *रघुवंश* में राजा और प्रजा के संबंध, पारिवारिक जीवन, दाम्पत्य प्रेम तथा प्रकृति के साथ मानव के सामंजस्य में भी आनन्द के विविध आयाम दृष्टिगत होते हैं। अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि कालिदास की आनन्द-दृष्टि व्यक्ति के व्यक्तिगत सुख को सामाजिक एवं नैतिक उत्तरदायित्व से जोड़ती है। इस प्रकार *रघुवंश महाकाव्य* में प्रतिपादित आनन्द की अवधारणा समकालीन जीवन में संतुलन, नैतिकता, कर्तव्यबोध और लोककल्याण की प्रेरणा प्रदान करने में भी प्रासंगिक है।

Keywords / प्रमुख शब्द
रघुवंश, कालिदास, आनन्द, जीवन-मूल्य, राजधर्म, लोककल्याण, त्याग, आत्मसंयम, धर्म, भारतीय काव्यशास्त्र

संसार में समस्त प्राणियों का व्यवहार मन की वृत्तियों द्वारा संचालित होता है। मानव मन की मूलवृतियां काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मत्सर अपनी प्रबल शक्तियों से संसार के प्रत्येक प्राणी को आच्छादित किए हुए हैं, कोई भी व्यक्ति मन की इन वृत्तियों से अछूता नहीं है। मन की यही मूलवृतियां वास्तव में उसके सुख व दुख की आधारशिला होती है। भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार मन की सभी स्वच्छंद वृत्तियां अविद्या है, मनुष्य का संपूर्ण व्यवहार इन्हीं के द्वारा प्रभावित रहता है। गीता में भी क्रोध, कठोरता, दर्प, दम्भ, अज्ञान आदि को मन की आसुरी शक्तियां[1] बताया गया है जो मनुष्य के जीवन में दुख का विशेष कारण बनती हैं।

त्रिविधं नरकस्येदं, द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभः तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।। गीता, 16/21

मन की इन प्रवृत्तियों को नियंत्रित करने का एकमात्र उपाय है- शास्त्रोक्त कर्तव्याकर्तव्य की व्यवस्था तथा विधान को समझ कर आचरण करना।[2] प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और दार्शनिक अरस्तू के मतानुसार "कला और साहित्य के माध्यम से मनुष्य के मानसिक विकारों का उचित विरेचन हो जाता है, और यही स्थिति उसे सच्चे सुख और अपूर्व आनंद की अनुभूति कराती है।" काव्य के माध्यम से मनुष्य अत्यंत सरल, सहज और शीघ्र रूप से क्या करना है और क्या नहीं, इसका ज्ञान प्राप्त कर मन की प्रवृत्तियों को नियंत्रित करते हुए आनंद की प्राप्ति कर सकता है।

आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकाश में काव्य प्रयोजनों की चर्चा करते हुए कहा है कि काव्य मानव के धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थों की सिद्धि कराने में सहायक, तत्काल दुख का नाश और आनंद की प्राप्ति कराने वाला कहा जाता है-

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।

---

[1] दम्भो दर्पोऽभिमानश्च, क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य, पार्थ सम्पदमासुरीम्।। गीता, 16/4

[2] यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य, वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति , न सुखं न परां गतिम्।।
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते, कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं, कर्म कर्तुमिहार्हसि।। गीता, 16/23-24

सद्यः परिनिर्वृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।।[3]

आचार्य भरत के अनुसार, नाटक (काव्य) का उद्देश्य दुखार्त, श्रम व शोक से व्याकुल व्यक्तियों को सुख और शान्ति की प्राप्ति करना बताया है।[4] वामन और भोज ने भी कीर्ति यश और प्रीति (आनंद) को काव्य का मुख्य प्रयोजन माना है।[5] वस्तुतः काव्य मानव को जीवन के सभी क्षेत्रों के प्रति जागरूक बनाता है तथा परिस्थितियों से जूझने की शिक्षा व प्रेरणा प्रदान करता है। वस्तुतः जीवन के सभी पक्षों की समग्रता से सिद्धि करना ही काव्य का चरम लक्ष्य है।

रघुवंशमहाकाव्य महाकवि कालिदास विरचित ऐसी ही प्रौढ कृति है, जो न केवल अपने काव्यात्मक सौंदर्य के कारण सहृदयों को आकृष्ट करती है, अपितु इसमें निहित नैतिक और व्यवहारिक शिक्षाओं के कारण भी विशेष रूप से अनुकरणीय हैं । रघुवंशमहाकाव्य एक ओर श्रृंगार, वीर, करुण, हास्य, भयानक आदि रसों के माध्यम से मानवीय अनुभूतियों की चरम अभिव्यक्ति कर पाठक को शाश्वत आत्मिक आनंद की ओर उन्मुख करता है, वहीं दूसरी ओर रघुवंश के राजाओं—जैसे दिलीप, रघु, अज, दशरथ और श्रीराम आदि के आदर्श आचरण, संयम, त्याग, कर्तव्यनिष्ठा और धर्मपालन के उदाहरणो के माध्यम से जीवन जीने की एक व्यावहारिक दिशा प्रदान कर सुख और आनंद की अवस्था में पहुंचाता हैं।

आश्रम चतुष्टय का पालन पुरुष का सबसे बड़ा परमार्थ है। कालिदास नें रघुवंशी राजाओं के माध्यम से आदर्श आश्रम व्यवस्था का मार्ग प्रशस्त किया है, जो मनुष्य के जीवन को सुख और आनंद से युक्त करता है। सूर्यवंश में उत्पन्न सभी राजा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास का शास्त्रोक्त रीति से पालन करते थे।

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्।। रघु.-1.8

---

[3] काव्यप्रकाश, 1/2

[4](क) धर्म्यं यशस्यं आयुष्यं हितं बुद्धि विवर्धनम्।
लोको उपदेशजननम् नाट्यमेतद् भविष्यति।। नाट्यशास्त्र, 1/113

(ख) दुखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।
विश्रान्ति जननं काले नाट्येतद् भविष्यति।। नाट्यशास्त्र, 1/144

[5] धर्मार्थ काम मोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
करोति कीर्तिप्रीतिञ्च साधुकाव्य निबंधनम्।। काव्यालङ्कार, 1/2

मानव जीवन के प्रयोजन धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी पुरुषार्थ चतुष्टय[6] का पालन किस प्रकार करना चाहिए इसका भी अत्यंत व्यवहारिक और वैज्ञानिक परिचय कालिदास ने दिया है। रघुवंशी राजा चारों आश्रमों में विचरण करते हुए धर्मपूर्वक यज्ञ, दान के लिए धनसंग्रह[7], तथा संतान उत्पन्न करने के लिए विवाह करते थे तथा अंत में योग के माध्यम से शरीर त्याग कर ब्रह्मानंद को प्राप्त करते थे।

कालिदास की मान्यता है कि गृहस्थ आश्रम का उद्देश्य केवल भोग-विलास नहीं, बल्कि संतानोत्पत्ति और पारिवारिक जीवन को सुखी बनाना है। गृहस्थ आश्रम में रहते हुए तपस्या करने से और ब्राह्मणों तथा दीनों को दान देने से जो पुण्य मिलता है, वह केवल परलोक में सुख देता है पर अच्छी सन्तान अपनी सेवा सुश्रुषा द्वारा इस लोक में तो सुख देती है। साथ ही तर्पण, पिण्डदान आदि द्वारा परलोक में भी सुख देती है।

लोकोत्तरसुखं पुण्यं तपोदानसमुद्भवम्।
संततिः शुद्धवंश्या हि परत्रेह च शर्मणे।। रघु.-1.69

कालिदास का मत है कि मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप और त्यागभाव से धन की इच्छा या संचय करना चाहिए, क्योंकि आवश्यकता से अधिक धन की लालसा, अग्नि में घी डालने के समान मनुष्य के दुःख को बढ़ाने का कार्य करती है। यदि रघुवंशी राजाओं की भांति मनुष्य भी धन का संचय कर समाज की भलाई में लगाये तो मनुष्य सूर्य की भांति तेज से युक्त हो सकता है तथा निरंतर आनंद का अनुभव कर सकता है, कालिदास ने राजा दिलीप[8], रघु[9], और अतिथि[10] के माध्यम से दान और त्याग दोनों के अति महनीय उदहारण प्रस्तुत किया है।

कालिदास अतिथियों एवं पूजनीय प्राणियों के आदर और सत्कार को सभी ईप्सित फलों की प्राप्ति का प्रमुख साधन मानते हैं। पूजार्हों का उचित सत्कार व सेवा न करने के कारण राजा दिलीप को

---

[6] त्रिविधः दु:खात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः।- साङ्ख्यसूत्र
[7] त्यागाय संभृतार्थानाम् सत्याय मितभाषिणाम्। रघु.-1.7
[8] प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः।। रघु.-1.18
[9] स विश्वजितमाजह्रे यज्ञं सर्वस्वदक्षिणम्।
आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव।। रघु.-4.86
[10] कोशेनाश्रयणीयत्वमिति तस्यार्थसग्रहः।
अम्बुगर्भो हि जीमूतश्चातकैरमिनन्द्यते।। रघु.-17.60

ISSN: 2583-5149 | Vol-4, issue-1| July 2026 | License (CC BY 4.0)

भी सन्तानप्राप्ति से सम्बंधित क्लेश सहना पड़ा,[11] इसके विपरीत मनुष्य यदि कर्तव्यनिष्ठ होकर उचित मार्ग का अनुसरण करें तो उसकी सभी अभिलाषायें पूर्ण होती हैं जिस प्रकार राजा दिलीप नें नंदिनी गाय की सेवा एवं रक्षा का जो प्रण लिया था, उसे अपने प्राणों से भी अधिक मानते हुए निर्वहन किया। अतः नंदिनी गाय ने उन पर प्रसन्न होकर उन्हें पुत्र रघु रुपी आनंद प्रदान किया।

ईप्सितं तदवज्ञानद्विद्धि सार्गलमात्मनः।
प्रतिबध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः।। रघु.-1.79

कालिदास कहते हैं कि जिस प्रकार शीतलता पानी का गुण है उसी प्रकार मनुष्य का गुण भी दयालु एवं शांत रहना है। क्रोध और काम नित्य मनुष्य का स्वभाव नहीं रह सकते हैं। मनुष्य का स्वरूप सच्चिदानंद है, इसलिए उसे प्रयत्न पूर्वक अपने क्रोध, काम इत्यादि विकारों से दूर रहने की चेष्टा करनी चाहिए। मनुष्य जितना विनम्र और दयालु भाव को अपनाता है उतना ही मानसिक शांति का अनुभव करता है।

उष्णत्वमग्न्या तपसंप्रयोगात्छैत्यं हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य।। रघु.-5.54

विनम्रता का आचरण मनुष्य की कीर्ति को बढ़ाता है। रघुवंशी राजाओं ने युद्ध में परास्त शत्रुओं के प्रति कठोरता का नहीं अपितु विनम्रता का भाव रखा तथा उन्हें पुनः शासन करने का अवसर प्रदान किया। जिससे उनकी कीर्ति और यश तो बढ़ा ही साथ ही शत्रु को भी मित्रता का मार्ग दर्शाने से भय का वातावरण नष्ट होकर सौहार्दपूर्ण वातावरण बना। जो मानव समाज की सुख, शांति और अध्यात्मिक विकास के लिए अत्यंत उपयोगी होता है।

निर्जितेषु तरसा तरस्विनाम् शत्रुषु प्रणतिरेव कीर्तये। रघु.-11.89

कालिदास का मानना है कि दूसरों की सहायता करने में जो मन :संतोष मिलता है वह परमानंद है। राजा अज ने अच्छे राजा की भांति अपने बल, ज्ञान और धन का प्रयोग केवल अपने सुख हेतु नहीं अपितु दुखियों के भय को दूर करने, विद्वानों के सत्कार तथा प्रजा के पालन के लिए किया। मानों उनका धन ही परोपकार के लिए नहीं था अपितु उसके गुण भी परोपकार के लिए ही थे।

बलमार्तभयोपशान्तये विदुषां सत्कृतये बहुश्रुतम्।

[11] प्रदक्षिणक्रियार्हायां तस्यां त्वं साधु नाचरः।। रघु.-1.76

वसु तस्य विभोर्न केवलं गुणवत्तापि परप्रयोजना।। रघु.-8.31

यदि अपनी प्रिय वस्तु के माध्यम से भी किसी का उपकार किया जा सकता है, तो मनुष्य को वह भी अविलंब करना चाहिए। जैसे राजा दशरथ ने बाल्यावस्था में ही राम को मुनिजनों की सहायता के लिए भेजते हुए जरा भी संकोच नहीं किया। यद्यपि अत्यंत प्रतीक्षा करने पर उन्हें पुत्र राम की प्राप्ति हुई थी तथापि उन्होंने अविलंब राम को मुनिजनों के साथ जाने की अनुमति दी क्योंकि जो आनंद याचिकाओं की इच्छा पूर्ण करने में है वह किसी अन्य में नहीं।

अप्यसुप्रर्णायिनां रघोः कुले न व्यहन्यत कदाचिदर्थिता।। रघु.-11.2

मनुष्य यदि दूसरों के कल्याण और सहायता में तत्पर रहता है, तो वह असंभव प्रतीत होने वाली दुर्लभ से दुर्लभ वस्तुओं को भी प्राप्त कर सकता है। ऐसे सत्कर्मों से उसे न केवल सांसारिक सुख की प्राप्ति होती है, बल्कि आध्यात्मिक आनंद भी मिलता है। जैसे राजा अज ने गंधर्वपुत्र सुदर्शन को श्राप से मुक्त किया, तो उसके प्रत्युपकार स्वरूप गंधर्व ने उन्हें 'सम्मोहन' नामक दुर्लभ अस्त्र प्रदान किया। सच्चा पराक्रम और मूल्य तभी है, जब उसका उपयोग दूसरों के हित में किया जाए।

प्रतिप्रियं चेद्भवतो न कुर्यां वृथा हि मे स्यात्स्वपदोपलब्धिः।। रघु.-5.56

कालिदास संतोष व आनन्द की धुरी विश्वास को मानते हैं। क्योंकि अपने बन्धुजनों पर विश्वास के द्वारा व्यक्ति भय से मुक्त होता है उसे आगे बढ़ने व चुनौतियों का सामना करने में सहायता होती है। विश्वास मानसिक शांति प्रदान कर व्यक्ति को तनाव व चिन्ताओं से मुक्त करता है। जब राजा अज युद्ध में अपने शत्रुओं को परास्त कर देता है और इंदुमती के पास आता है तो इंदुमती का सारा डर भाग जाता है।

तस्या प्रतिद्वन्द्विभवाद्विषादात्सद्यो विमुक्तं मुखमाबभासे।
निश्वासवाष्पापगमात्प्रपन्नः प्रसादमात्मीयमिवात्यदर्शः।। रघु.-7.68

कालिदास मनुष्य के जीवन में मित्र और संगति का भी विशेष महत्व दर्शाते हैं उनका मानना है कि मित्र न तो अत्यधिक बलवान होना चाहिए और न ही अत्यधिक दुर्बल। जो मित्र बहुत दुर्बल होते हैं, वे किसी प्रकार की सहायता नहीं कर सकते और जो अत्यधिक बलवान होते हैं, वे अपने प्रभाव से मित्र को दबा सकते हैं या अपनी इच्छानुसार व्यवहार कर सकते हैं। इसलिए श्रेष्ठ यही है कि

मित्रता ऐसे लोगों से की जाए जो सामर्थ्य और स्थिति में समान हों, मध्यम शक्ति वाले मित्र ही सच्चे, स्थिर और सहायक सिद्ध होते।

हीनान्यनुपकर्तृणि प्रवृद्धानि विकुर्वते
तेन मध्यमशक्तिनि मित्राणि स्थापितान्यतः।। रघु.-17.48

व्यक्ति के गुण सभी संपत्तियों का द्वार होते हैं,[12] कालिदास की मान्यता है कि यदि मनुष्य उदारता, संयम, शौर्य जैसे गुणों को अपने व्यक्तित्व में उतार ले तो संसार के सभी वैभव उसे प्राप्त हो सकते हैं। जिस प्रकार राजा अज ने अपने गुणों से पिता का हृदय जीतकर राज्य अथवा पृथ्वी पर शासन किया उसी प्रकार अपने शौर्य और पराक्रम से इंदुमती को भी प्राप्त किया। अज ने भोग की अभिलाषा से नहीं अपितु पृथ्वी की सेवा व पिता की आज्ञा को सर्वोपरि मानते हुए राज्यभार संभाला तथा अपने गुणों से सारी प्रजा और सम्पतियों का दिल जीत लिया।

तदुपस्थितमग्रहीदजः पितुराज्ञेति न भोगतृष्णया।। रघु.-8.2

कालिदास का मत है कि सभी के प्रति समभाव और प्रेमपूर्ण आचरण द्वारा मनुष्य मानसिक संतोष की प्राप्ति कर सकता है, जो आनंद की प्राप्ति हेतु अत्यंत आवश्यक है। जिस प्रकार समुद्र सैकड़ों नदियों से समता का व्यवहार करता है वैसे ही राजा अज न किसी का बुरा चाहते थे और न किसी से वैर करते थे। वे प्रजा के प्रति प्रेमपूर्वक आचरण करते थे। वे न तो अत्यंत कठोर थे और न अत्यंत कोमल अपितु मध्यमार्ग से अपने शत्रु राजाओं को राजगद्दी से उतारे बिना ही उनको उसी प्रकार नम्र कर देते थे जिस प्रकार मध्यम गति से बढ़ने वाली वायु वृक्षों को उखाड़ती तो नहीं परन्तु झुका अवश्य देती है।

न खरो न च भूयसा मृदुः पवमानः पृथिवीरुहामिव।
स पुरस्कृतमध्यमक्रमो नमयामास नृपाननुद्धरन्।। रघु.-8.9

रघु ने अज को राज्य का शासन सौंप कर स्वर्ग के कभी नष्ट न होने वाले भोग पदार्थों की लालसा को भी त्याग दिया[13] तथा दिलीप के वंशजों की भांति स्वयं भी वल्कल धारण कर आत्मज्ञान हेतु

[12] स्वयं प्रदुग्धेऽस्य गुणैरुपस्नुता वसूपमानस्य वसूनि मेदिनी।। किरात.-1/18

[13] अथ वीक्ष्य रघुः प्रतिष्ठितं प्रकृतिष्वात्मजमात्मवत्तया।
विषयेषु विनाशधर्मसु त्रिदिवस्थेष्वपि निःस्पृहोऽभवत्।। रघु.- 8.10

वन में आश्रय लिया। रघुवंशी राजाओं की यह परंपरा रही थी कि वे युवावस्था बीतने के पहले ही मुनिवृत्ति धारण कर योगबल के माध्यम से देहत्याग के अनंतर निर्वाण रूपी मोक्ष की प्राप्ति कर लेते थे। कालिदास मोक्ष प्राप्ति को जीवन का चरम लक्ष्य मानते है तथा इस बात पर बल देते है कि ब्रह्मचर्य और गृहस्थ के कार्यों का भलीभांति निर्वहन कर मनुष्यों को मुनिवृति, स्वाध्याय और योग द्वारा मोक्ष की प्राप्ति हेतु प्रयत्नरत होना चाहिए।[14]

युवावस्था तथा वृद्धावस्था में मनुष्य का व्यवहार कैसा होना चाहिए, इसका अत्यंत सुंदर वर्णन प्रस्तुत करते हुए कालिदास कहते हैं कि मनुष्य को राजा अज की भांति अपने कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए तथा व्यवहार से लोक में दया, दान इत्यादि द्वारा ऐश्वर्य प्राप्त करते हुए अपनी युवावस्था व्यतीत करनी चाहिए और उसके पिता रघु की भांति वृद्धावस्था में योग साधना द्वारा चित्त एकाग्रता एवं कर्मों के बीजों को ज्ञान रुपी अग्नि में भस्म करते हुए संस्कार के नाश के लिए यत्न करना चाहिए।[15] प्रजाजनों ने अज और रघु के रूप में मानों मूर्तिमान ऐश्वर्य और मोक्ष के दर्शन साथ साथ किये।

यतिपार्थिवलिङ्गधरिणौ ददृशाते रघुराघवौ जनैः।
अपवर्गमहोदयार्थभुवयंशाविव धर्मयोर्गतौ। रघु.-8.16

सत्व, रजस, तमस इन तीनों गुणों को जीतकर स्थिर बुद्धि एवं दृढ़ चित्त होकर ज्ञान प्राप्ति करने से मनुष्य अपने मन को विचलित होने से रोक सकता है-

पणबन्धमुखान्गुणानजः षडुपायुङ्क समीक्ष्य तत्फलम्।
रघुरप्यजयद्गुणत्रयं प्रकृतिस्थं समलोष्ठकाञ्चनः।। रघु.-8.21

आलस्य मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु[16] है। इस एकमात्र अवगुण में ही सभी विनाशों की परंपरा मानो निवास करती है क्योंकि इसके रहते मनुष्य अतुलनीय वैभव और संपत्ति को भी फूटे घड़े में से पानी के समान गवां देता है। कालिदास बताते है कि राजा अतिथि आलस्य का परित्याग कर सभी कार्यों को स्वयं अपने निरीक्षण में संपन्न करता था जिस कारण उसके शासनकाल में प्रजा और राज्य अत्यंत प्रसन्नता और समृद्धि को प्राप्त कर रहे थे।

[14] योगेनान्ते तनुत्यजाम्। रघु.-1/8
[15] इतरो दहने स्वकर्मणाम् ववृते ज्ञानमयेन वह्निना॥ रघु.-8/20
[16] आलस्यं हि मनुष्यस्य शरीरस्थो महान् रिपु:-। नीतिशतकम् -86

स धर्मस्थसखः शश्वदर्थिप्रत्यर्थिनां स्वयं

ददर्श संशयच्छेद्यान्व्यवहारानतन्द्रितः।। रघु.-17/39

इसी प्रकार राजा दशरथ ने भी चक्रवर्ती हो जाने पर भी आलस्य को कभी अपने पास नहीं आने दिया क्योंकि वे जानते थे कि एक दोष भी सभी सम्पतियों का नाशक हो सकता है।

श्रियमवेक्ष्य स रन्ध्रचलामभूदनलसोऽनलसोमसमद्युतिः। रघु.-9.15

कालिदास इंदुमती की मृत्यु का उल्लेख करते हुए यह दर्शाते हैं कि मनुष्य के भाग्य पर किसी का वश नहीं होता। जो कुछ भी भाग्य में निर्धारित होता है, उसे टाल पाना असंभव है।[17] यदि ईश्वर की इच्छा हो, तो विष भी अमृत में परिवर्तित हो सकता है और अमृत भी विष बन सकता है। जीवन और मृत्यु ईश्वर की इच्छा और भाग्य पर निर्भर हैं, न कि केवल कारणों और साधनों पर।

स्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम्।

विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया।। रघु.-8.46

पञ्चतंत्र में भी ईश्वरेच्छा तथा भाग्य को अतीव बलशाली बताते हुए कहा गया है –

अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति।
जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जितः कृत्प्रयत्नोऽपि गृहे विनश्यति।।

वस्तुतः मनुष्य को अपने प्रारब्ध भोगने ही होते है,[18] वह केवल कर्मों का समर्पण करके ही इस संसार के चक्र से मुक्त हो सकता है।

अज विलाप के सन्दर्भ में महाकवि कालिदास जीवन की वास्तविकता को बताते हुए कहते हैं कि यह संसार मरणशील है जिसने भी देह धारण किया है, उसका मरना स्वाभाविक है।[19] मनुष्य को विपरीत परिस्थितियों में भी धैर्य रखना चाहिए। जिस प्रकार रघुवंशी राजा अज ने सुख की अवस्था में ऐश्वर्य का अभिमान न करते हुए आत्मज्ञान का परिचय दिया वैसे ही दुख के समय में भी धीरज धारण करके अध्यात्मज्ञान के प्रकाश से निराशा के अंधकार को दूर किया। कालिदास कहते हैं कि

---

[17] यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः -नीतिशतकम् -93

[18] नाभुक्तं क्षीयते कर्म, कल्पकोटिशतैरपि।
भोक्तव्यं, कृतं कर्म शुभाशुभम्।। (ब्रह्मवैवर्तपुराण,17/37)

[19] मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते। रघु.-8.87

जब शरीर और आत्मा भी आपस में बिछुड़ने वाले माने गए हैं। तब पुत्र, स्त्री आदि बाहरी सम्बन्धों के बिछोह से मनुष्य को दुख नहीं करना चाहिए।

स्वशरीरशरीरिणावपि श्रुतसंयोग विपर्ययौ यदा।
विरहः किमिवानुतापयेद्वद् बाह्यैर्विषयैर्विपश्चितम्।। रघु.-8.89

कालिदास नें उपदेश दिया है कि शोक मनुष्य को अत्यंत जीर्ण-शीर्ण और कमजोर कर देता उन्होंने शोक को अग्नि के समान बताया है, जब अत्यधिक कठोर और मजबूत लोहा भी आग में तपाये जाने पिघल जाता है तो शोकरूपी अग्नि में जलकर तो प्राणधारियों की क्या दशा होगी।[20] इसलिए मनुष्य को विवेक का आश्रय लेते हुए अत्यंत शोक नहीं करना चाहिए। राजा अज ने इंदुमती के शोक में क्षय रोग हो जाने से अपने प्राणों को गंवा दिया। तथा राजा दशरथ ने पुत्र वियोग में शोकरूपी अग्नि में अपने प्राणों को भस्म कर दिया अतः प्रयत्नपूर्वक विवेकशील होते हुए मनुष्य को मोह तथा शोक का त्याग करना चाहिए। सांसारिक मोह छोड़कर तथा शोक से दूर रहते हुए मनुष्य आन्तरिक शान्ति का अनुभव करता है। यह आंतरिक शांति ही आत्म-साक्षात्कार करने का प्रथम सोपान है, जो परमानन्द की ओर प्रवृत्त करती है।

निगृह्यशोकं स्वयमेव धीमान्वर्णाश्रमावेक्षण जागरुकः। रघु.-14.85

भगवद्गीता में कहा गया है कि मनुष्य को सुख और दुःख दोनों को समभाव से ग्रहण करना चाहिए।[21] कवि इसी भाव को प्रकट करते हुए कहते हैं कि जब श्रीराम को पिता की आज्ञा से वन जाना पड़ा, तब अयोध्यावासियों ने देखा कि वल्कल धारण करते समय उनके मुखमंडल पर वही स्थिरता, वही तेज था जो राज्याभिषेक के समय मंगल सूचक बहुमूल्य वस्त्राभूषण धारण करते समय था। सुख-दुख दोनों परिस्थितियों में उनका मन और मुखमंडल समान भाव में स्थिर रहा।

दधतो मङ्गलक्षोमे वसानस्य च वल्कले।
ददृशुर्विस्मितास्तस्य मुखरागं समं जनाः।। रघु.-12.8

[20] अभितप्तमयोऽपि मादर्वं भजते कैव कथा शरीरिषु।। रघु.-8.43

[21] (क) सुखदु:खे समे कृत्वा लाभलाभौ जयाजयौ | गीता – 2/38
(ख) दु:खेष्वनुद्विगमना: सुखेषु विगत स्पृह:।
वीतराग भय क्रोध: स्थित धीर्मुनिरुच्यते।। गीता – 2/56

कुमारसंभव में भी कालिदास ऐसा ही प्रसंग पार्वती की तपस्या के समय पर प्रस्तुत करते है, जहाँ पार्वती भी राजमहल के बहुमूल्य वस्त्रो को छोड़कर वल्कल वस्त्रों को तथा सुख संपदा को त्याग कर वन में निवास को स्वीकार करते समय किंचित भी उद्विग्न नहीं थी।[22]

त्याग और प्रतिज्ञा के प्रतीक केवल राम ही नहीं हैं, बल्कि उनके अनुज भरत भी इन गुणों की जीवंत मूर्ति हैं। जब माता कैकेयी ने राम को वनवास भेजकर भरत के लिए अयोध्या का राज्य माँगा, तब भरत ने न केवल उस राज्य को अस्वीकार किया, बल्कि उसे श्रीराम की अमूल्य धरोहर मानकर सच्चे सेवक की भाँति आनंद पूर्वक उसकी रक्षा की। तपस्वी जीवन अपनाकर राम की मर्यादा और वचनों की रक्षा करते हुए मानो वे अपनी माता के उस पाप का प्रायश्चित कर रहे हों।

दृढभक्तिरिति ज्येष्ठे राज्यतृष्णापराङ्मुख।
मातुः पापस्य भरतः प्रायश्चित्तामिवाकरोत्।। रघु.-12.19

संस्कृत काव्य में यौवन, रूप, और प्रभुता इन तीनों को विनाश की संपत्तियां[23] कहा गया है मनुष्य के मन और अहंकार को बढ़ाने में इन तीनों में से एक का होना ही पर्याप्त है पर जहां यह तीनों एक साथ उपस्थित हो तो वहां अनर्थ और दुखों की परंपरा का कहना ही क्या। विषय वासना और सुख भोग की कामनाएं अनंत कर्मों को उत्पन्न करती हैं जो युवावस्था में ही अत्यंत प्रबल होती हैं इसलिए युवावस्था में ही वासना और कामनाओं को त्याग करने का सर्वोत्तम समय कहा गया है। यदि व्यक्ति युवावस्था में ही इन्द्रिय निग्रह करते हुए समस्त विषयों के प्रपंच का त्याग कर सके तो निसंदेह सैकड़ों जन्मो में मिलने वाले परम लाभ अर्थात मोक्ष के मार्ग को वह एक ही जीवन के थोड़े से समय में ही प्राप्त कर सकता है। सभी रघुवंशी राजाओं ने जितेन्द्रिय होकर समुन्द्र पर्यंत पृथ्वी पर चिरकाल तक शासन किया -

वयोरूपविभूतिनामेकैकं मदकारणम्।
तानि तस्मिन् समस्तानि न तस्योत्सिषिचिमनः।। रघु.-17.43

[22] यथा प्रसिद्धैर्मधुरं शिरोरुहैर्जटाभिरप्येवम् अभूत्तदाननम्।
न षट्पदश्रेणिभिरेव पङ्कजं सशैवालासङ्गमपि प्रकाशते। कुमारसंभवं-5.9

[23] क) यौवनं धनसंपत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्।। हितोपदेश
ख) गर्भेश्वरत्वमभिनवयौवनत्वमप्रतिरूपत्वममानुषशक्तत्वम् चेति मह्तीयम् खलु अनर्थपरंपरा सर्वा -शुकनासोपदेश

ISSN: 2583-5149 | Vol-4, issue-1| July 2026 | License (CC BY 4.0)

राजा अतिथि का वर्णन करते हुए कालिदास स्वयं भी यह स्वीकार करते हैं कि मनुष्य के दुखों का कारण बाहरी तत्व नहीं अपितु भीतरी तत्व है क्योंकि काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर यह छह शत्रु सदैव आपके साथ विद्यमान रहते हैं सर्वप्रथम मनुष्य को उनको वशीभूत करना अत्यंत अनिवार्य है जो व्यक्ति इन षडरि को वशीभूत करते हुए आचरण करते हैं उस पर बाहरी शत्रु विजय प्राप्त नहीं कर सकते हैं

अनित्याः शत्रवो बाह्या विप्रकृष्टाश्चते यतः।

अतः सोऽभ्यन्तरान्नित्यान् षद्दूर्वमजयद्रिपुनः।। रघु.-17.45

कालिदास प्रकृति को सभी रोगों की औषधि मानते हैं। उनका मानना है कि प्रकृति का सान्निध्य मनुष्य को आत्मसाक्षात्कार की ओर ले जाता है। यदि मनुष्य अपनी इंद्रियों से प्रकृति का अनुभव करे, तो वह अपने शारीरिक और मानसिक विकारों से ऊपर उठकर आनंद की अनुभूति कर सकता है। जैसे राजा नल ने अपने पुत्र नभ को राज्य सौंपकर वृद्धावस्था में तप को आधार बनाया और क्षमा से युक्त होकर अत्यंत शांत भाव से वन में मृगों के साथ रहने लगे, ताकि वे पुनः इस संसार में आगमन न हो । प्रकृति के समीप रहने से मनुष्य आध्यात्मिक शांति और मोक्ष की ओर अग्रसर होता हुए सहज ही जन्म-मृत्यु के बंधन से मुक्ति पा सकता है।

क्ष्मां लम्भयित्वा क्षमयोपपन्नं वने तपः क्षान्ततरश्चचार। रघु.-18.9

कालिदास ने आत्म-कल्याण के मार्ग में इन्द्रियों की प्रबलता को प्रमुख शत्रु माना है। इन्द्रियों की विषयों के साथ निरंतर संगति से आसक्ति उत्पन्न होती है, और आसक्ति से कामना उत्पन्न होती है, कामना से क्रोध उत्पन्न होता है, इस प्रकार सभी दुर्गुण इन्द्रिय-आसक्ति से उत्पन्न होते हैं। और जो व्यक्ति इन्द्रिय-तृप्ति में लिप्त रहता है, वह वासनाओं के द्वारा बहता रहता है।रघुवंशी राजा अग्निवर्ण इन्द्रिय-विषयोपभोग में इतना लिप्त हो गये कि राज-काज के सभी कार्यों के प्रति विमुख हो गये।

एवमिन्द्रियसुखानि निर्विशन्, अन्यकार्यविमुखः स पार्थिवः। रघु.-19/47

विषयों के प्रति अत्यधिक आसक्ति तथा रात दिन भोगविलासता के कारण राजा अग्निवर्ण क्षयरोग से उसी प्रकार ग्रस्त हो गए, जिसप्रकार दक्ष के श्राप से चन्द्रमा को क्षय रोग हो गया, किन्तु इतना होने पर भी उन्होंने भोगविलास की वस्तुओं का त्याग नहीं किया। रोग के प्रभाव से दिन प्रतिदिन

दुर्बल होकर निस्संतान मृत्यु को प्राप्त हुए।[24] वास्तव में यदि इन्द्रियां विषयों में फंस जाती हैं तो उन्हें रोकना कठिन हो जाता है।

दृष्टदोषमपि तन्न सोऽत्यजत्सङ्गवस्तु भिषजामनाश्रवः।
स्वादुभिस्तु विषयैर्हृतस्ततो दुखमिन्द्रियगणो निवार्यते।। रघु.-19/49

इसप्रकार कालिदास उपरोक्त नैतिक सद्गुणों और इन्द्रिय संयम को मानव-जीवन की सफलता तथा अध्यात्म-विज्ञान की ओर उन्मुख होने का कारण मानते है साथ ही रघुवंश में उत्पन्न अग्निवर्ण जैसे चरित के माध्यम से यह सन्देश भी देते हैं कि भोग विलासिता और विषयों के प्रति आसक्ति सभी गुणों का नाश कर अंतत विनाश का कारण बनते हैं। रघुवंशी राजाओं के उदार चरित्रों के माध्यम से महाकवि कालिदास नें अनेक रमणीय उपदेश प्रदान किए हैं कि कैसे व्यक्ति सदाचार, संयम, कर्तव्य-परायणता, परोपकार जैसे नैतिक गुणों से लौकिक तथा अलौकिक सभी प्रकार की संपत्तियां को आकर्षित करते हुए परमानंद को प्राप्त कर सकता है। रघुवंशमहाकाव्य का रसास्वादन कर मनुष्य सभी विषय-वासनाओं को भूलकर, काव्य के परम उद्देश्य **"सद्यः परिनिवृत्तये"** अर्थात तत्कालिक मानसिक शांति और संतोष का प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए कांतासम्मित उपदेश की भांति चिरस्थायी आनंदपूर्ण स्थिति को प्राप्त कर सकता है।

----

[24] आमयस्तु रतिरागसंभवो दक्षशाप इव चन्द्रमक्षिणोत्। रघु.-19/48